

02 पाठ्यचर्या के केन्द्र में कला

तारा किनी

हमने स्कूलों में सब प्रकार की कलाओं को "पाठ्येतर" गतिविधियों के डिब्बे में डाल रखा है। अर्थ यह लिया जाता है कि कला पाठ्यचर्या के अतिरिक्त है, उसके हाशिए पर है, उस सबसे बाहर है जिसे पवित्र और पुनीत माना जाता है। सीधे–सीधे शब्दों में कहें तो उन्हें गैर–अकादमिक समझा जाता है। सब अपराधों से मुक्ति दिलाने वाली बोर्ड परीक्षा उनका उद्देश्य और लक्ष्य नहीं है – इसलिए इसमें कोई हर्ज नहीं समझा जाता कि कलाओं को समय–सारिणी में वह समय मिले जब बच्चे थक चुके हों यानी देर दोपहर में। इससे पहले कि वे अपने बस्ते बाँधें और इन्तजार करती बस की ओर बढ़ें, चलो कुछ गाना, बजाना, नाचना और फाइन आर्ट ही हो जाए! समय–सारिणी में ऊँचा स्थान गणित और भाषा जैसे 'महत्त्वपूर्ण' विषयों को दिया जाता है (विज्ञान भी काफी हद तक इस स्थान के नजदीक है)। ये विषय सुबह पढ़ाए जाते हैं, जब बच्चे ताजगी से भरे, सीखने को उत्सुक होते हैं। मैं उस स्कूल के दर्शन और सोच के सामने नतमस्तक होने को तैयार हूँ जिसके दिन की शुरुआत गीत, नृत्य, अभिनय या चित्रकला से होती हो, क्योंकि उसने शिक्षा के तत्व को समझ लिया है मगर आज के समय में ऐसा कोई स्कूल मिल पाना मुश्किल ही है।

यह मेरी व्यक्तिगत राय या कल्पना की बात नहीं है। मैं देवी प्रसाद द्वारा लिखी गई, नैशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तक "आर्ट्स: द बेसिस ऑफ एजुकेशन" को उद्धृत करना चाहूँगी। गाँधी और टैगोर हमारे अग्रणी दार्शनिक हैं–शिक्षा के बारे में उनके विचारों का समकालीन भारत में केन्द्रीय स्थान है। देवी प्रसाद उन्हीं के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं और शिक्षा के दो मुख्य लक्ष्य रखते हैं:

"शिक्षा को चाहिए कि वह समाज द्वारा महत्त्वपूर्ण माने जाने वाले मूल्यों की समझ बनाए और उन्हें जीवन के व्यवहार में लाना सिखाए। इसके साथ–साथ उसे चाहिए कि वह आत्म–सम्मान और स्वतंत्रता तथा विवेक और समझ–बूझ की भावना को व्यक्ति के मन में बैठाए ताकि वह आजादी से सोच पाए और जीवन में अपने चुनाव स्वयं करने में सक्षम बन पाए।"

कला शिक्षा की बुनियाद का काम करे, इसके हक में तर्क देते हुए वे अपनी बात को इस तरह समेटते हैं:

"दूसरे शब्दों में, सामान्य तौर पर शिक्षा, और विशेष तौर पर कला–शिक्षा, एक तरीका है बढ़ने और विकास करने का, प्रकृति की सुन्दरता, सामाजिक मूल्यों और सम्पूर्ण जीवन के सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षों के प्रति संवेदनशील होने का।"

मगर वैश्वीकरण के गहरे प्रभाव और बच्चों को दुनिया की अर्थव्यवस्था में "बाजार योग्य" बनाने की कोशिश के चलते कला–शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने में हम कमजोर पड़ गए हैं। रचनात्मक कलाएँ ही बच्चों को अपनी जड़ें स्थापित करने और जीवन का गहरा अर्थ पाने में मदद करेंगी। यह उसे दुनिया में हो रहे बहुत बड़े पैमाने के बदलावों का सामना करने में भी मददगार होगा। इसके अलावा इक्कीसवीं सदी में सृजनात्मकता एक आवश्यक हुनर की तरह हो गई है और इसकी धार रचनात्मक कलाओं के क्षेत्र में सबसे बेहतर तेज की जा सकती है। इसके बाद, सीखने के अन्य क्षेत्रों में भी इसे हस्तान्तरित किया जा सकता है।

सवाल उठता है कि अगर यह कारण स्कूली पाठ्यचर्या में रचनात्मक कलाओं को 'पाठ्यचर्या–अतिरिक्त' से 'पाठ्यचर्या का केन्द्रीय भाग' बनाने के लिए पर्याप्त है, तो पाठ्यचर्या तैयार कैसे की जाए? इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकार की पाठ्यचर्या को लागू करने का क्या तरीका

अपनाएँ ताकि वह किसी बच्चे के विशेष सन्दर्भ में उसकी आवश्यकताओं को सम्बोधित कर सके।

मैं इन सवालों को एक कार्यरत शिक्षक के तौर पर प्राप्त अपने अनुभव की रौशनी में सम्बोधित करना चाहूँगी, ऐसे शिक्षक के तौर पर जिसे शिक्षकों के व्यावसायिक विकास और पाठ्यचर्या–विकास के क्षेत्रों में कुछ विशेषज्ञता हासिल है।

कलाओं को केन्द्र में रखने वाली पाठ्यचर्या का निर्माण

इस सम्बन्ध में मेरा सबसे पहला बल इस बात पर होगा कि यह प्रक्रिया शिक्षकों के सहयोग से होनी चाहिए। जब शिक्षक को लगेगा कि वह पहले से तय कर दी गई बात को आगे पहुँचाने वाला नहीं बल्कि स्वयं पाठ्यचर्या का निर्माता है, तो वह पाठ्यचर्या को अपनाएगा और उसे अपने रचनात्मक विचारों से समृद्ध करने की कोशिश भी करेगा। यह सही है कि इस प्रक्रिया में समय काफी लगेगा। इसके लिए शायद बहुत से स्कूल तैयार नहीं होंगे। लेकिन सहयोग की भावना से पाठ्यचर्या–विकास की प्रक्रिया (जिसमें इससे सम्बद्ध विशेषज्ञों का सहयोग भी होगा) में निहित है कि शिक्षकों को व्यावसायिक स्तर पर अपना विकास करने का मौका मिलेगा। इससे स्कूल व्यवस्था में भी निश्चित तौर पर गुणात्मक सुधार आएगा।

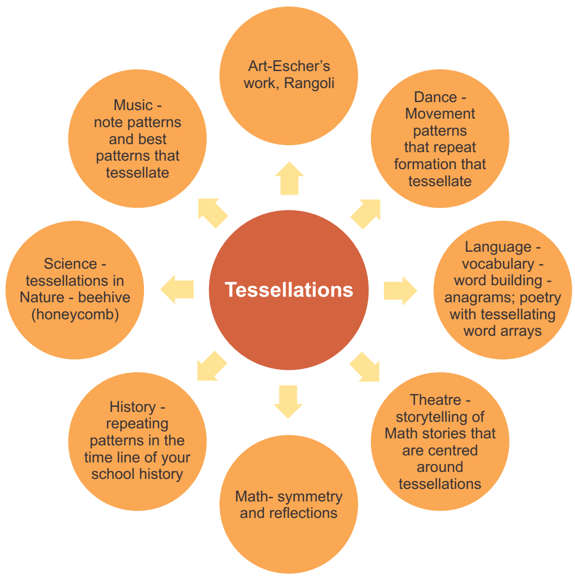
जब शिक्षक विशेषज्ञता के अपने क्षेत्र के सम्बन्ध में अपने मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं और मिल–जुलकर यह तय करने के लिए काम करते हैं कि क्या पढ़ाया जाना सबसे महत्त्वपूर्ण है, तो विद्यार्थियों के लिए ज्ञानार्जन की गहराई तक जाने की सम्भावनाएँ भी बहुत अधिक बढ़ जाती हैं।

अगला कदम विषयों के चुनाव से सम्बन्धित होगा – किन विषयों का चुनाव हो ताकि शिक्षण को कला के इर्द–गिर्द केन्द्रित करते हुए काम हो पाए। पूरे साल के दौरान चुने गए विषयों में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी ही चाहिए:

- मुद्दा/विषय बच्चे के लिए प्रासंगिक हो;
- मूल विषय शिक्षक समूह की दिलचस्पी का हो;
- यह समाज के सन्दर्भ में संस्थाओं तथा उनके मूल्यों के लिए प्रासंगिक हो।

इन तीनों शर्तों को पूरा करना चुनौतीपूर्ण है लेकिन शिक्षक समूह के साथ सोच, परख, परिचर्चा हो जाए तो बात बन जानी चाहिए। आदर्श रूप में तो बच्चों के साथ भी कुछ चर्चा होना आवश्यक है। लेकिन ध्यान में रखना होगा कि सत्र शुरू होने से पहले पाठ्यचर्या का तैयार होना आवश्यक है। इसके मद्देनजर शिक्षक बच्चों के साथ पिछले अकादमिक सत्र के अन्त से पहले बातचीत–चर्चा कर सकते हैं, या फिर पूरे सत्र के दौरान विचार की गई बातों को विद्यार्थियों के साथ दस्तावेज की शक्ल देकर उनके लिए प्रासंगिक मुद्दों या विषयों तक पहुँच सकते हैं। इस उद्देश्य को ध्यान में रखें तो विद्यार्थियों के साथ अनौपचारिक विचार–विमर्श के चलते उन्हें तथा उनकी जरूरतों और प्राथमिकताओं को बेहतर जानने की प्रेरणा भी बनी रहेगी। इस प्रक्रिया के इस पक्ष पर जितना बल दिया जाए वह कम है। कक्षा में सार्थक ज्ञानार्जन हो पाए, इसके लिए महत्त्वपूर्ण है कि हम बच्चों को बढ़िया तरीके से समझ पाएँ और किसी ऐसी बात तक पहुँच पाएँ जो उनके लिए महत्त्वपूर्ण है।

एक बार विषय तय हो जाता है तो विचार और परख करते हुए बस इस बात का दिमागी खाका खींचना भर रह जाता है कि ज्ञान की प्रत्येक शाखा में उस मुद्दे की ओर किस तरह बढ़ा जाए। यहाँ मैं एक उदाहरण दे रही हूँ



लेकिन उसकी झलक, उसकी प्रतिध्वनि स्कूल में किए जाने वाले काम में देखने–सुनने को मिल सकती। इस काम से मैं सक्रिय तौर पर सम्बद्ध रही हूँ। इस दिमागी खाके में विभिन्न विषय–क्षेत्रों के लिए प्रस्तावित विषय–वस्तु को विभिन्न कक्षा–स्तरों के बच्चों के आयु–वर्ग के अनुसार ढाला जा सकता है। इसे हासिल करने के लिए सबसे बढ़िया तरीका अन्तर्राष्ट्रीय मानकों (जैसे McRel www.mcrel.org@standards.benchmark) या राष्ट्रीय मानक (जैसे एन.सी.ई.आर.टी.) के दिशानिर्देशों का सहारा लिया जा सकता है और प्रत्येक पाठ के सीखने सम्बन्धी नतीजों को आयु–अनुरूप मानक से जोड़ा जा सकता है।

हो सकता है कि आप दिमागी खाके के इस चित्र को देखें और सोचें कि इसमें कला केन्द्र में कहाँ है? एकीकृत ज्ञानार्जन के इस खाके में चौकोर निर्माण का विषय ललित कला, संगीत, नृत्य, थिएटर जैसी रचनात्मक कलाओं या अन्य ज्ञान–क्षेत्रों में अन्तर्विषयक दक्षताओं के लिए अनुकूल है। एक और तरीका हो सकता है कि किसी ऐतिहासिक घटना (मसलन, द्वितीय विश्व युद्ध) जैसे विषयों को लिया जाए जिन्हें संगीत, नृत्य, थिएटर और कला आदि में ढाला जा सकता हो।

प्रत्येक विषय को अलग–थलग रखकर पढ़ाए जाने की बजाए एकीकृत दृष्टिकोण प्रयोग में लाकर शिक्षा होती है तो ज्ञानार्जन वास्तविक संसार में कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से स्थित होता है। जब कलाओं को इस एकीकरण के केन्द्र में ले आया जाता है तो देवी प्रसाद जिस संवेदनशीलता और जीवन के जिन सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षों की बात कहते हैं, वे और भी अधिक उजागर होते हैं।

टैगोर ने 1922 में सृजनात्मक एकत्व पर लिखी अपनी किताब में रचनात्मकता के लिए प्रत्येक व्यक्ति की माँग और आवश्यकता को अभिव्यक्त किया है:

"हमारे अन्तर में एकत्व का आनन्द अभिव्यक्ति की खोज में रचनात्मक हो जाता है; जबकि हमारी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए हमारी इच्छा निर्माणशील होती है। पानी के बर्तन को बस बर्तन के तौर पर ही लिया जाए तो सवाल उठता है, 'यह अस्तित्व में ही क्यों है?' उसके निर्माण की उपयुक्तता उसके अस्तित्व में होने का औचित्य बन जाती है। लेकिन जहाँ वह बर्तन केवल सुन्दर रचना के रूप में होता है, वहाँ उसे किसी प्रश्न के उत्तर की जरूरत नहीं है – उसे तो बस होना है, कुछ करना नहीं है। उसके रूप–स्वरूप में एकत्व दीखता है – और उसमें जो कुछ भी भिन्न दिखाई देता है, वह उस एकत्व से इस तरह सम्बद्ध होता है कि हमारे अस्तित्व में मौजूद एकत्व के संगीत के साथ एक रहस्यमयी ढंग की सहानुभूति पैदा करता है।"

बच्चों के ज्ञानार्जन के केन्द्र में कलाओं को लाने से न केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में गहराई आएगी बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी में सामंजस्य का भाव भी पैदा होगा। इक्कीसवीं सदी में यह निहायत जरूरी है, जबकि प्रौद्योगिकी में चकरा देने वाले बदलाव हो रहे हैं, संसार पहले से कहीं अधिक हिंसात्मक हो गया है। कलाओं को स्कूलों में पाठ्यचर्या के केन्द्र में रखा जाए तो न केवल रचनात्मकता की दक्षताओं बल्कि व्यक्तियों और पूरे समाज में रचनात्मक एकत्व की कल्पना की जा सकती है।

__तारा किनी__ शिक्षा और संगीत के क्षेत्र में स्वतंत्र परामर्शदाता हैं। वे बंगलौर, आन्ध्र प्रदेश, दिल्ली तथा अहमदाबाद में कई प्रतिष्ठित संस्थाओं के साथ पाठ्यचर्या विकास तथा शिक्षकों और प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण का काम करती रही हैं। तारा माल्या अदिति इण्टरनैशनल स्कूल में 24 साल तक शिक्षक तथा प्रशासक रही हैं। वे सृष्टि स्कूल ऑफ आर्ट, डिजाइन एण्ड टेक्नॉलाजी में सेण्टर फॉर एजुकेशन, रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग की संस्थापक भागीदार हैं। उन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में गहन प्रशिक्षण प्राप्त किया है, थियेटर के लिए संगीत–रचना की है और संगीत के प्रोग्रामों का निर्देशन किया है। उन्होंने स्टैन्फर्ड यूनिवर्सिटी में शिक्षण किया है तथा शेफील्ड और हेल्सिंकी में संगीत और शिक्षा पर शोध–पत्र प्रस्तुत किए हैं। उनसे tara.kini@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। __अनुवाद:__ रमणीक मोहन